नदियों को जोड़ने की खामख्याली

शैलेन्द्रनाथ घोष

प्रधानमंत्री तथा उनकी इस घोषणा पर मेज़ें थपथपाने वाले सांसद शायद सोचते हैं कि जब सड़कों का नेटवर्क बन सकता है, तो नदियों का क्यों नहीं? इस सोच में देश के बुनियादी संसाधनों - मिट्टियों, नदियों, सागर-संगमों, पहाड़ों और जंगलों - के प्रति और जलवायु की तमाम विविधताओं के प्रति नासमझी ही झलकती है।

देश की सारी प्रमुख नदियों को जोड़ने के वाजपेयी सरकार के संकल्प पर यदि अमल किया गया, तो यह इतिहास में सहस्राब्दि की सनक के रूप में दर्ज़ होगा। ऐसा इसलिए कि यह योजना सारी इकॉलॉजिकल, राजनैतिक, आर्थिक व मानवीय लागत को अनदेखा करती है और इसका आकार अभूतपूर्व है। दुनिया में कहीं भी आज तक इतने बड़े पैमाने की और इतनी पेचीदगियों से भरी परियोजना नहीं उठाई गई है।

प्रधानमंत्री तथा उनकी इस घोषणा पर मेज़ें थपथपाने वाले सांसद शायद सोचते हैं कि जब सड़कों का नेटवर्क बन सकता है, तो नदियों का क्यों नहीं? इस सोच में देश के बुनियादी संसाधनों - मिट्टियों, नदियों, सागर-संगमों, पहाड़ों और जंगलों - के प्रति और जलवायु की तमाम विविधताओं के प्रति नासमझी ही झलकती है।

यह सही है कि परिवहन की दृष्टि से नदियों के नेटवर्क की कल्पना करने वाले सर आर्थर कॉटन एक उम्दा इंजीनियर थे। इस बात में भी कोई संदेह नहीं कि अस्सी के दशक में इसी विचार को सिंचाई व बिजली के मकसद से प्रस्तुत करने वाले के.एल.राव भी विश्व विख्यात इंजीनियर थे। मगर यह भी सही है कि कई मर्तबा इंजीनियर व्यापक मुद्दों को अनदेखा कर देते हैं।

कुछ सीधे-सादे सवाल

निर्णय लेने से पहले सरकार को कुछ अहम सवालों की जांच-पड़ताल करनी चाहिए थी- देश में वे कौन से इलाके हैं जहां पानी उनकी ज़रूरतों से अधिक है? उत्तर-पूर्वी भारत की ब्रह्मपुत्र घाटी के अलावा क्या अन्य कोई ऐसा क्षेत्र है? गंगा के पानी से पोषित जो प्रान्त बरसात में बाढ़ग्रस्त होते हैं, क्या वे गर्मियों में पानी के लिए नहीं तरसते? बाढ़ और सूखे के इस दुष्चक्र के पीछे बुनियादी कारण क्या हैं?

फिर, सिंचाई की प्रचलित धारणा कितनी सही है? धान और गन्ने के अलावा कौन-सी फसल है जिसे इतना अधिक पानी चाहिए? क्या यह सही नहीं है कि अन्य फसलों को लबालब सिंचाई की नहीं बल्कि मात्र नमी की ज़रूरत होती है? क्या अत्यंत किफायती सिंचाई के अलावा अन्य किस्म की सिंचाई से मिट्टी बरबाद नहीं होती? क्या एक ही साल में दो-तीन मर्तबा धान उगाना लवणीयता और बंजरपन को न्यौता नहीं है?

कर्नाटक, तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश में बारिश की वैसी कम नहीं है, जैसी राजस्थान और गुजरात में है। फिर भी क्यों कर्नाटक, तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश में ही अन्य राज्यों से पानी आयात करने की मांग इतनी मुखर है? क्या इसका कारण इन प्रान्तों के बड़े किसानों द्वारा अपनाया गया फसल चक्र नहीं है? जब नदियों को जोड़ने की इस योजना का कोई लाभ राजस्थान को नहीं मिलने वाला है, तो क्या राजस्थान को गया-गुज़रा क्षेत्र मानना होगा? क्या हमने राजस्थान में मिट्टी पर इंदिरा गांधी नहर के असर का आकलन किया है? हम इसकी बदौलत उत्पन्न हरियाली

की बातें तो खूब करते हैं मगर साथ ही साथ इस इलाके की मिट्टी में लवणों की मात्रा में भी वृद्धि हो रही है।

हम सारी प्रमुख नदियों को जोड़ने की बात तो कर रहे हैं, मगर यदि बांग्लादेश अपनी ज़मीन पर से लिंक नहर खोदने की अनुमति न दो तो आप गंगा और ब्रह्मपुत्र को कैसे जोड़ेंगे? यदि हम इन दो विशाल नदियों को भारत की धरती के ज़रिए ही जोड़ना चाहें, तो इसमें किस तरह की तकनीकी चुनौतियां होंगी और इसकी लागत क्या होगी? पूर्वी बिहार और पश्चिम बंगाल पहले से ही गंगा से अपर्याप्त जल आपूर्ति की शिकायत करते आ रहे हैं। तब क्या यह परियोजना उनकी शिकायतों में और इज़ाफा करके अन्तर्प्रान्तीय विवादों को जन्म नहीं देगी? जब बांग्लादेश को पानी की आपूर्ति कम होगी, तो क्या वह इस मामले को अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर नहीं उठाएगा? क्या हम एकतरफा ढंग से गंगा के पानी के बंटवारे सम्बंधी भारत-बांग्लादेश संधि को समाप्त कर सकते हैं? दिसम्बर 1996 में हस्ताक्षरित इस संधि के तहत भारत ने वचन दिया है कि फरक्का पर पानी की मात्रा सुनिश्चित की जाएगी।

क्या नदियों को जोड़ने से जल प्रदूषण का फैलाव भी नहीं बढ़ेगा?

क्या प्रायद्वीपीय भारत में चार-पांच साल तक लगातार ऐसा सूखा पड़ा है कि इन इलाकों की समस्या को हिमालय का पानी लाए बगैर नहीं सुलझाया जा सकता? और यदि हालत इतनी ही खराब है, तो हिमालय के ग्लेशियरों के सिकुड़ने की स्थिति को देखते हुए भविष्य में इस समस्या से कैसे निपटेंगे?

सरकार लम्बे समय से नदी घाटी-वार विकास कार्यक्रमों की बात करती रही है। क्या नदियों को जोड़ने की नई योजना इस घाटी-वार नज़रिए के विरुद्ध नहीं है? एक ओर तो देश स्थानीय जल स्वराज की अवधारणा - यानी पानी दोहन के विक्रेंदित तरीकों से सारी वैध ज़रूरतों की पूर्ति की अवधारणा - को स्वीकार करने लगा है, वहीं दूसरी ओर यह विशालकाय योजना इस नई जागरूकता के विरुद्ध काम करेगी।

कुछ गहरे सवाल

इसके अलावा कुछ और भी गहरे सवाल हैं। और हालत यह है कि केंद्र या राज्य सरकारों ने अभी तक उपरोक्त सीधे-सादे सवालों पर भी विचार नहीं किया है। विभिन्न राज्यों में हमारे लोक-लुभावन राजनीतिज्ञों की एक मानसिकता बन गई है। उन्हें लगता है कि उनका काम यह है कि जहां से भी संभव हो, पानी ले आएं ताकि स्थानीय लोग तात्कालिक लाभ के लिए इसका उपयोग कर सकें; फिर इसके दूरगामी परिणाम चाहे जो हों। इन राजनीतिज्ञों को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि एक समय सभ्यता का पालना माने जाने वाले मेसोपोटोमिया को अति-सिंचाई ने तबाह कर दिया था और पिछले तीन हज़ार वर्षों से वह क्षेत्र बंजर पड़ा है। किसी को परवाह नहीं है कि अभी पचास साल पहले तक सिंचाई आधारित समृद्धि के प्रतीक माने जाने वाले लायलपुर, मॉन्टगुमरी और सरगोडा (अब पाकिस्तान में) ज़िले आज अल्प-उत्पादकता से ग्रस्त हैं और मिट्टी की लवणीयता से जूझ रहे हैं।

हमारे अपने देश में भी पंजाब में भाकरा नहर कमान क्षेत्र और उत्तरप्रदेश में सरदार सहायक नहर कमान क्षेत्र में उत्पन्न हुए दलदल व लवणीयता यही कहानी दोहरा रहे हैं। (ये वे दुखद तथ्य हैं जिन्हें सरदार सरोवार बांध के मामले में न्यायमूर्ति बी.एन. कृपाल ने पंजाब की समृद्धि का बखान करते हुए अनदेखा कर दिया था।)

कुछ वर्ष पहले विश्व खाद्य व कृषि संगठन ने आकलन किया था कि दुनिया की करीब 50 प्रतिशत सिंचित भूमि लवणीय हो चुकी है। मगर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मृदा वैज्ञानिक प्रोफेसर कोवदा का अनुमान था कि आंकड़ा 80 प्रतिशत है। अनुमानों में अंतर इस वजह से था कि इनमें अलग-अलग किस्म की सिंचाई (प्रवाह-सिंचाई,

विभिन्न राज्यों में हमारे लोक-लुभावन राजनीतिज्ञों की एक मानसिकता बन गई है। उन्हें लगता है कि उनका काम यह है कि जहां से भी संभव हो, पानी ले आएं ताकि स्थानीय लोग तात्कालिक लाभ के लिए इसका उपयोग कर सकें; फिर इसके दूरगामी परिणाम चाहे जो हों।

नलकूप वगैरह) पर ध्यान दिया गया था।

इकॉलॉजी के सवाल

इकॉलॉजी के गहरे सवालों को तो हमारे देश में सदा दरकिनार किया जाता है। हम शायद ही नदियों की विभिन्न भूमिकाओं को देखने की कोशिश करते हैं। नदियों की कई भूमिकाएं हैं- (1) लवणों व विषैले पदार्थों को घाटियों से समुद्र में ले जाना; (2) सागर संगम पर मीठा पानी पहुंचाना ताकि सागर व नदी का पानी मिलकर कई जन्तुओं के प्रजनन का वातारवण निर्मित हो; (3) जलचक्र का नियमन; (4) सड़े-गले पदार्थों को समुद्री प्लवकों के लिए उपलब्ध कराना, ये प्लवक धरती के अन्य जीवों के लिए काफी मात्रा में ऑक्सीजन पैदा करते हैं। नदी की इन भूमिकाओं में बाधा पहुंचाकर हम खुद के लिए संकट ही उत्पन्न करेंगे।

प्रत्येक नदी के पानी की गुणवत्ता किसी भी अन्य नदी से भिन्न होती है। यह उसके उद्गम स्थल, उसके जलागम क्षेत्र और उसकी घाटी के सामान्य गुणों से तय होती है। गुणवत्ता में अंतर सिर्फ कठोरता-मृदृता का नहीं बल्कि लवणों के प्रकार व मात्रा, पानी में हवा की मात्रा, पारदर्शिता, विद्युत-रासायनिक गुणों तथा स्वस्थ करने की क्षमता में भी होता है। इन विशिष्ट गुणों से ही यह तय होता है कि उस नदी में कौन से जलीय जंतु निवास करेंगे, कौन-से पक्षी व कीट उस पर मंडराएंगे।

गंगा नदी का पानी हिल्सा मछली को अण्डे देने में मदद करता है, हिल्सा इसी पानी की मछली है। डॉल्फिन कुछेक नदियों में ही नज़र आती हैं- और वह भी अलग-अलग किस्म की। नदी-नदी के अनुसार पक्षियों व कीटों की प्रजातियों में भी विविधता होती है। जैव विविधता बहुत महत्वपूर्ण है। हम नहीं जानते कि किसी तंत्र में जीवन के ताने-बाने को बनाए रखने में किस प्रजाति की क्या भूमिका होती है। इस संदर्भ में चन्द अत्यंत सीमित अध्ययन हुए हैं। यू.एस.ए. में जब विशाल टेलिको बांध का निर्माण लगभग पूरा हो चुका था, तब भारी खर्च हो चुकने के बावजूद अदालत ने इस परियोजना को रोकने का आदेश दिया था क्योंकि यह नदी स्माल डार्ट मछली का आवास थी और यह मछली कहीं और नहीं पाई जाती। यदि हमारी प्रमुख नदियों को एक-दूसरे से जोड़ा गया, तो कई प्रजातियां नदारद हो जाएंगी। यह अपूरणीय क्षति होगी।

गंगा नदी का पानी हिल्सा मछली को अण्डे देने में मदद करता है, हिल्सा इसी पानी की मछली है। डॉल्फिन कुछेक नदियों में ही नज़र आती हैं- और वह भी अलग-अलग किस्म की। नदी-नदी के अनुसार पक्षियों व कीटों की प्रजातियों में भी विविधता होती है। जैव विविधता बहुत महत्वपूर्ण है।

इतिहास

आइए, अब कुछ ऐसे पहलुओं पर नज़र डालें जो पहले ही सामने आ चुके हैं। नेवेली लिग्नाइट कार्पोनेशन के सेवा निवृत्त इंजीनियर आर.के. मूर्ति ने बताया है कि इंदिरा गांधी के काल में इस परियोजना पर गंभीरता से विचार-विमर्श हुआ था और अलंघ्य तकनीकी व भौगोलिक बाधाओं के मद्देनज़र इसे तिलांजलि दे दी गई थी:

"पटना एकमात्र ऐसा बिन्दु है जहां अतिरिक्त पानी उपलब्ध है, यहां पर गंगा औसत समुद्र सतह से 200 फुट की ऊंचाई पर बहती है। यदि इसे प्रायद्वीप की किसी भी नदी से जोड़ना है, तो पानी को विंध्य श्रृंखला की ऊंचाई तक उठाना होगा यानी औसत समुद्र सतह से 2860 फुट ऊपर। 20,000 क्यूसेक पानी को इतनी ऊंचाई तक पम्प करने में देश में उस समय एक दिन में उत्पादित सारी बिजली खर्च होती।"

बिजली की खपत उस समय 9 लाख मेगावॉट आंकी गई थी।

यदि यह मान लें कि अब उस योजना में संशोधन करके पानी को विंध्य पर्वत के ऊपर न ले जाकर एक लम्बे रास्ते से पर्वत के बाजू से ले जाया जाएगा, तो भी इसकी लागत अकल्पनीय होगी। बताया जाता है कि सुप्रीम कोर्ट के सामने इसका जो आंकड़ा पेश किया गया, वह चकरा देने वाला है - 5,60,000 करोड़ रुपए। दुनिया की कोई एजेन्सी इस परियोजना को फण्ड देने पर विचार तक नहीं करेगी।

संशोधित योजना के अनुसार अरुणाचल प्रदेश में मानस

एक मिनट के लिए मान लें कि सारे खतरों के बावजूद देश फैसला करता है कि नदियों को जोड़ना ही है। यदि ऐसा हुआ तो मानव विस्थापन के रूप में इसकी लागत भयानक होगी।

से ब्रह्मपुत्र का पानी गंगा में लाया जाएगा, गंगा-महानदी लिंक के प्रवाह को पश्चिम/उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पूर्व में (गुरुत्व द्वारा) मोड़ा जाएगा और पर्वतों के दक्षिण में ले जाएगा। इसके अलावा महानदी-गोदावरी लिंक के प्रवाह को पूर्व से दक्षिण-पश्चिम/दक्षिण की ओर (गुरुत्व से) मोड़ा जाएगा। यह सब कागज़ पर तो बहुत अच्छा लगता है। यदि शेक्सपीयर की तर्ज़ पर कहें तो 'नदी-मोड़क इंजीनियर महाशय, धरती और आसमान पर कई ऐसी चीज़ें है, जो आपने शायद सपने में भी न सोची होंगी।'

इन इंजीनियरों को पूर्व सोवियत संघ की उस योजना का हश्र याद दिलाना लाज़मी है जिसके तहत् साइबेरिया की नदियों के पिघलते बर्फ को मोड़कर मध्य एशियाई गणतंत्रों की नदियों तक पहुंचाने के मंसूबे थे। यह योजना बुरी तरह नाकाम रही थी क्योंकि जहां कहीं भी नहर बनी वहां नमकीन पानी की घुसपैठ हुई और कई अन्य पर्यावरणीय हादसे पेश आए। अन्ततः 1980 के दशक में इस योजना को छोड़ना पड़ा। इसी प्रकार से केलिफोर्निया (यू.एस.ए.) में भी दो नदियों को जोड़ने के प्रयास हानिकारक साबित हुए। इसकी वजह से भारी मात्रा में लवण का जमाव हो गया। इसके अलावा जब पानी समुद्र में नहीं पहुंचा तो तटवर्ती इकॉलॉजी भी प्रभावित हुई।

मानव विस्थापन

एक मिनट के लिए मान लें कि सारे खतरों के बावजूद देश फैसला करता है कि नदियों को जोड़ना ही है। यदि ऐसा हुआ तो मानव विस्थापन के रूप में इसकी लागत भयानक होगी। राममनोहर रेड्डी के शब्दों में, "बराजों के निर्माण तथा हज़ारों किलोमीटर नहरों की खुदाई में गांव गायब हो जाएंगे, शहर जलमग्न हो जाएंगे और लाखों हैक्टर कृषि भूमि खप जाएगी। यह योजना दसियों लाख

लोगों को विस्थापित करेगी। विस्थापितों की तादाद विभाजन के दौरान हुए जन स्थानांतरण से कहीं ज्यादा होगी।"

प्रदूषण

इसकी एक लागत और भी है। कई नदियां खुली मल-जल नालियां बन चुकी हैं। नई व्यवस्था में प्रदूषण नियंत्रण और भी मुश्किल हो जाएगा। तब कई और नदियों के बड़े-बड़े हिस्से नालियों में तब्दील हो जाएंगे।

समस्या की जड़

ज़ाहिर है, कावेरी नदी के पानी को लेकर अन्तर्प्रांतीय विवाद ने नदी जोड़ो परियोजना में रुचि जगाई है। मगर उस विवाद की जड़ में अनुचित फसल प्रक्रियाएं और पारम्परिक वर्षा जल दोहन की कारगर प्रणालियों का उपयोग न होना है। तंजौर के बड़े किसानों की जिद है कि तीन-तीन धान की फसलें लेंगे। धान की फसल में बहुत पानी लगता है। दूसरी ओर कर्नाटक में माण्ड्या के किसान गन्ने की फसल लेना चाहते हैं, जिसमें भी बहुत पानी लगता है।

ये तौर-तरीके अन्यत्र भी नज़र आते हैं - जैसे पंजाब के कम वर्षा वाले इलाकों में धान उगाना और महाराष्ट्र में बड़े पैमाने पर गन्ना उगाना। हमारे देखते-देखते भारत की उपजाऊ मिट्टियां बंजरपन की ओर बढ़ रही हैं। केंद्र व राज्य सरकारें इस प्रक्रिया का संचालन कर रही हैं। अब वे बड़े किसानों की इस अदूरदर्शिता पूर्ण मांग में फंस रही हैं कि सारी नदियों को जोड़ दिया जाए ताकि बड़े किसान ऐसी नगदी फसलें उगा सकें जो उनकी मिट्टी के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

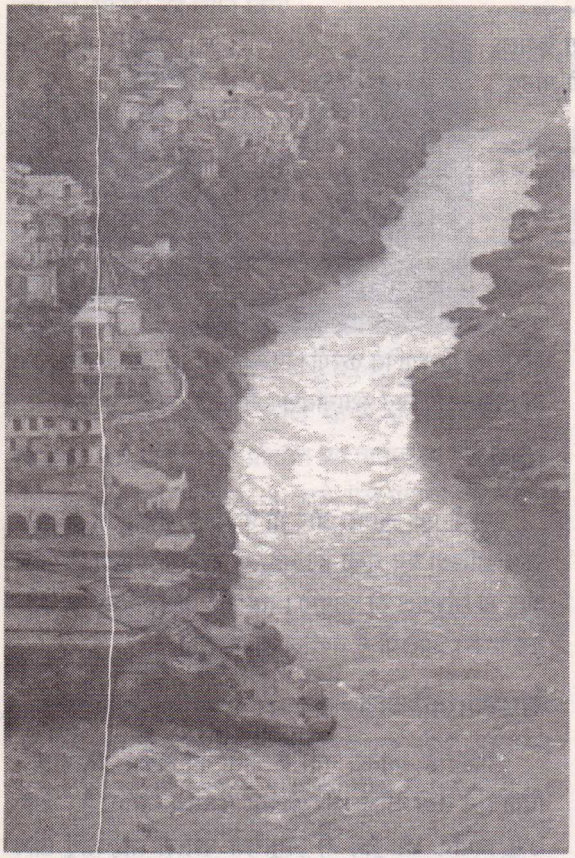

कृषि वैज्ञानिक आई.सी.महापात्र ने कर्नाटक व तमिलनाडु के लिए एक वैकल्पिक फसल पैटर्न सुझाया है, जिसमें पानी की खपत न्यूनतम होगी। यह वहां की मिट्टी को भी बचाएगा और किसानों की आमदनी के साथ-साथ लोगों की पोषण सम्बंधी स्थिति भी सुधरेगी:

"गैर-सिंचित (वर्षापोषित) क्षेत्रों में कर्नाटक रागी, ज्वार, बाजरा, चना, लाल चना, मूंगफली, अरण्डी और नारियल की फसलें अपना सकता है। सिंचित क्षेत्रों में गन्ना, मक्का, बैंगन, मिर्ची, शहतूत, टमाटर, आलू, हल्दी, अदरख, अंगूर, केले व पान की खेती की जा सकती है। तमिलनाडु में नदी घाटी के 62 प्रतिशत भाग में साल में तीन बार धान उगाया जाता है - कुरवाई, तलादी और साम्बा। हमारा अध्ययन दर्शाता है कि साम्बा किस्म की एक ही फसल तलादी या कुरुवाई के मुकाबले ज़्यादा उपज दे सकती है। धान के अलावा तमिलनाडु में रागी, मूंगफली, तिल, अरण्डी, चना, मटर, गन्ना और कपास अपनाए जाने चाहिए।"

इस बात में कोई तुक नहीं है कि एक ओर तो हम दिवालिया करने वाली विशाल परियोजनाएं हाथ में लें तथा दूसरी ओर मौजूदा वर्षा जल दोहन की संरचनाओं को तहस-नहस होने दें जबकि उनकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है।

इस बात में कोई तुक नहीं है कि एक ओर तो हम दिवालिया करने वाली विशाल परियोजनाएं हाथ में लें तथा दूसरी ओर मौजूदा वर्षा जल दोहन की संरचनाओं को तहस-नहस होने दें जबकि उनकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। आज कर्नाटक में "कम से कम 11 हज़ार पारम्परिक जल दोहन संरचनाएं (टैन्क, तालाब वगैरह) गाद से भरकर सूख चुकी हैं क्योंकि किसानों ने इनकी देखभाल करना बंद कर दिया है।" तमिलनाडु में बड़ी संख्या में अद्भुत एरियां थीं जिनकी कार्यक्षमता दुनिया के विशेषज्ञों द्वारा सराही गई है। ये अब उपेक्षित पड़ी हैं। इसके अलावा, रेत खनन के ज़रिए तमिलनाडु अपनी कुछ नदियों की क्षमता का ह्रास कर रहा है। चेन्नै शहर में बहती कूम नदी एक गंदा नाला बन गई है। इससे ज़ाहिर है कि राज्य ने अपनी नदियों की कितनी देखभाल की है।

चाहे तमिलनाडु हो, कर्नाटक हो या कच्छ, पानी के लिए किसी बड़ी परियोजना की कोई ज़रुरत नहीं है। भारत के विख्यात मौसम वैज्ञानिक पी.आर. पिशारोटी के मुताबिक, "यदि किसी इलाके में सालाना वर्षा 50 से.मी. है, तो वहां की पानी की ज़रूरतों की पूर्ति स्थानीय वर्षा जल दोहन तकनीकों से की जा सकती है।"

राजस्थानों व कई अन्य राज्यों के सूखा क्षेत्रों में किए गए तज़ुर्बों से स्पष्ट प्रमाणित हो गया है कि स्थानीय वर्षा जल दोहन तकलीकें समस्त वैध ज़रूरतों की पूर्ति कर सकती हैं। किन्तु बड़ी परियोजना के प्रति आसक्त इंजीनियर्स इन तकनीकों की क्षमता को जानबूझकर कम करके बताते हैं। ये इंजीनियर्स मौजूदा शासकों को पट्टी पढ़ाने में कामयाब रहे हैं। नदी जोड़ो परियोजना विकेन्द्रित जल

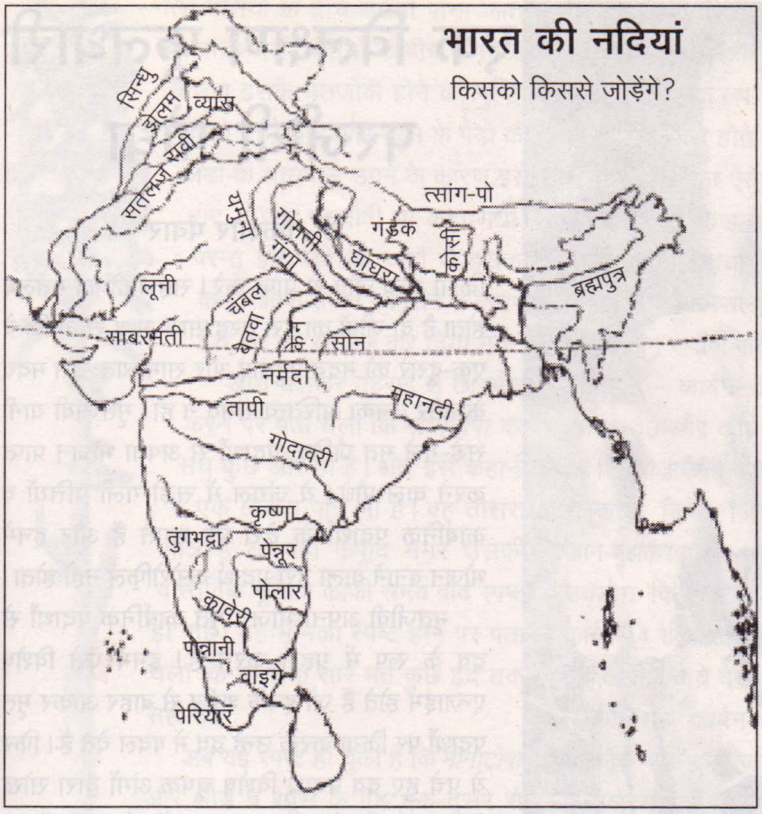

दोहन टेक्नॉलॉजी को तबाह करने का काम करेगी। यह परियोजना रिसाव टैन्कों की क्षमता को भी नकारती है जबकि ठीक से रखरखाव हो, तो ये रिसाव टैंक एक-दो सालों के सूखे से निपटने हेतु पर्याप्त पानी भूजल में जमा करने में सक्षम हैं। यह परियोजना सरकार के उस नज़रिए को भी झुठला देती है जो पानी के मिले-जुले भण्डारण की वकालत करता है। कुल मिलाकर यह उन बड़े किसानों के सामने घुटने टेकना है जो पानी की भारी खपत पर आधारित फसलें उगाने पर आमादा हैं।

भारत के जल संसाधन की बुनियादी समस्या हिमालय के बर्फ से पोषित नदियों में गाद भरने की रफ्तार है, जो विश्व में सर्वाधिक है। इसके कारण नदियां उथली हो जाती हैं और उनमें संधारण क्षमता कम हो जाती है। इसकी वजह से पानी तेज़ी से समुद्र में बह जाता है। इसी वजह से बारिश के दौरान बाढ़ें और गर्मियों में सूखे पड़ते हैं। लिहाज़ा प्रमुख काम यह होना चाहिए कि नदियों की गाद हटाकर उन्हें गहरा किया जाए, नहरें फिर से खोदी जाएं, हिमालय में फिर से जंगल लगाए जाएं और नदी किनारों पर वृक्षारोपण किया जाए। नदियों को जोड़ने के चक्कर में ये बुनियादी काम छूट जाएंगे।

सरकार को पहले यह अध्ययन करना चाहिए कि (i) किस जलवायु में कौन-सी फसलें उपयुक्त या अनुपयुक्त हैं; (ii) पोषण के हिसाब से कौन-कौन-सी फसलों का मिला-जुला उपयोग होना चाहिए और (iii) इनके लिए किस तरह की सिंचाई/निकास उपयुक्त होंगे।

परिवहन और बिजली

इस बात का भी बहुत हल्ला है कि नदियों को जोड़कर बने ताने-बाने में परिवहन की कितनी सुविधा होगी मगर जो जलमार्ग अभी उपलब्ध हैं उनमें नौका परिवहन को बढ़ावा देने का कोई कदम नहीं उठाया गया है। यह भी सोचना होगा कि डीज़ल वगैरह से चलने वाली नौकाएं प्रदूषण फैलाएंगी।

जहां तक बिजली का सवाल है, तो सबसे पहले तो यह स्पष्ट करना होगा कि फैलते उद्योगों या बड़े-बड़े भूमिपतियों को बिजली सप्लाई करना तब तक अनुत्पादक रहता है जब तक कि साथ में यह उपाय न किया जाए कि वे अपना कचरा नदी में नहीं फेकेंगे। आखिर यही तो वे लोग हैं जो नदियों को गंदे नालों में तब्दील कर देते हैं।

इस परियोजना की इकॉलॉजिकल, आर्थिक व मानवीय लागत के मद्देनज़र सरकार को इस तुगलकी उपक्रम से पीछे हट जाना चाहिए। और हम उम्मीद करें कि राष्ट्रहित में सुप्रीम कोर्ट स्वयं अपने आदेश की समीक्षा करेगा।

(स्रोत फीचर्स)